International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

"पारिस्थितिक संवैधानिकता का सैद्धांतिक प्रतिमान: भारतीय पर्यावरणीय शासन की पुनर्व्याख्या"

ज्योति धर्मशक्तू
शोधकर्ता, राजनीति विज्ञान विभाग,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
https://doi.org/10.65578/ijarmt.v3.i1.722

सारांश

इक्कीसवीं सदी में जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता ह्रास, प्रदूषण और पारिस्थितिक असमानता जैसी चुनौतियों ने लोकतांत्रिक संवैधानिक व्यवस्थाओं के समक्ष मूलभूत प्रश्न खड़े कर दिए हैं। यह शोध-पत्र भारतीय संदर्भ में पारिस्थितिक संवैधानिकता (Ecological Constitutionalism) और पर्यावरणीय शासन सिद्धांत (Environmental Governance Theory) के अंतर्संबंध का समालोचनात्मक विश्लेषण करता है। अध्ययन का मुख्य तर्क यह है कि भारत में पर्यावरण संरक्षण एक निर्देशात्मक सिद्धांत से विकसित होकर न्यायिक व्याख्या के माध्यम से मौलिक अधिकार का स्वरूप ग्रहण कर चुका है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार), अनुच्छेद 48A (राज्य का कर्तव्य) तथा अनुच्छेद 51A(g) (नागरिक का कर्तव्य) को आधार बनाकर सर्वोच्च न्यायालय ने लोकहित याचिका और हरित न्यायशास्त्र के माध्यम से सतत विकास, सावधानी सिद्धांत तथा प्रदूषक-भुगतान सिद्धांत को संवैधानिक मान्यता प्रदान की है।

यह शोध-पत्र पारिस्थितिक संवैधानिकता को एक मानक (normative) ढाँचे के रूप में स्थापित करता है, जो संविधान को पारिस्थितिक स्थिरता, अंतःपीढ़ी न्याय तथा प्रकृति के आंतरिक मूल्य की दिशा में पुनर्परिभाषित करता है। तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से भारत की तुलना लैटिन अमेरिका तथा दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक मॉडलों से की गई है।

अध्ययन के निष्कर्ष संकेत करते हैं कि यद्यपि भारत में न्यायिक नवाचार के माध्यम से पर्यावरणीय अधिकारों का सशक्त विकास हुआ है, किंतु संस्थागत कमजोरियाँ और शासनगत चुनौतियाँ इसकी प्रभावशीलता को सीमित करती हैं।

मुख्य शब्द : पारिस्थितिक संवैधानिकता, पर्यावरणीय शासन, रूपांतरणीय संवैधानिकता, लोकहित याचिका, सतत विकास, जलवायु न्याय, तुलनात्मक संवैधानिक अध्ययन, भारत

1. प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी का वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य अभूतपूर्व पर्यावरणीय चुनौतियों से चिह्नित है, जिनमें जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता का क्षरण, वायु एवं जल प्रदूषण, संसाधनों का अति-दोहन तथा पारिस्थितिक असमानता प्रमुख हैं। ये संकट केवल पर्यावरणीय प्रबंधन या सार्वजनिक नीति की विफलताएँ नहीं हैं, बल्कि वे संवैधानिक शासन की वैधता, राज्य की उत्तरदायित्व-व्यवस्था तथा लोकतांत्रिक संरचनाओं की स्थिरता से गहरे रूप में जुड़े हुए हैं। समकालीन राजनीतिक सिद्धांत में यह तर्क उभर रहा है कि पर्यावरणीय संकट "संवैधानिक क्षण" (constitutional moment) का संकेत देता है, जिसमें राज्य की मूलभूत संरचनाओं और अधिकार-परिकल्पनाओं की पुनर्समीक्षा आवश्यक हो जाती है (May & Daly, 2015; Bosselmann, 2015)।

इस संदर्भ में एक केंद्रीय प्रश्न उभरता है: क्या संवैधानिक ढाँचा स्वयं को इस प्रकार रूपांतरित कर सकता है कि पारिस्थितिक संतुलन, अंतःपीढ़ी न्याय और सतत विकास शासन का आधारभूत सिद्धांत बन जाए? पर्यावरणीय संवैधानिकता

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

(environmental constitutionalism) और पारिस्थितिक संवैधानिकता (ecological constitutionalism) की उभरती धाराएँ इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर प्रस्तुत करती हैं। इन दृष्टिकोणों के अनुसार, पर्यावरण संरक्षण को केवल नीतिगत विकल्प के रूप में नहीं, बल्कि संवैधानिक दायित्व और मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए (Boyd, 2012)।

भारत का संवैधानिक अनुभव इस बहस में विशेष महत्व रखता है। यद्यपि 1950 के मूल संविधान में पर्यावरणीय अधिकारों का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं था, तथापि 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के माध्यम से अनुच्छेद 48A (राज्य का कर्तव्य) तथा अनुच्छेद 51A(g) (नागरिक का मौलिक कर्तव्य) को जोड़ा गया। इससे पर्यावरण संरक्षण को संवैधानिक नीति-निर्देशक तत्व के रूप में मान्यता मिली। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के व्यापक और प्रगतिशील व्याख्यात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से "जीवन के अधिकार" को स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार तक विस्तारित किया। यह न्यायिक नवाचार भारत को उन संवैधानिक लोकतंत्रों की श्रेणी में स्थापित करता है, जहाँ पर्यावरणीय अधिकार न्यायिक सक्रियता के माध्यम से विकसित हुए हैं (Shankar & Mehta, 2008)।

भारतीय संदर्भ में यह विकास केवल विधिक परिवर्तन नहीं, बल्कि रूपांतरणीय संवैधानिकता (transformative constitutionalism) का उदाहरण है, जिसमें न्यायपालिका ने राज्य की नीति-रिक्तताओं को भरते हुए सतत विकास, सावधानी सिद्धांत तथा प्रदूषक-भुगतान सिद्धांत जैसे अंतरराष्ट्रीय मानकों को संवैधानिक ढाँचे में समाहित किया। तथापि, यह प्रश्न अभी भी प्रासंगिक है कि क्या न्यायिक सक्रियता दीर्घकालिक पर्यावरणीय शासन के लिए पर्याप्त है, अथवा इसके लिए संस्थागत पुनर्संरचना और बहु-स्तरीय शासन मॉडल की आवश्यकता है (Lemos & Agrawal, 2006)।

यह शोध-पत्र भारतीय संवैधानिक ढाँचे में पर्यावरणीय अधिकारों के विकास का राजनीतिक-सैद्धांतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। विशेष रूप से, यह अध्ययन पारिस्थितिक संवैधानिकता और पर्यावरणीय शासन सिद्धांत के अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है तथा यह मूल्यांकन करता है कि भारत का न्यायिक-प्रेरित मॉडल किस सीमा तक प्रभावी, उत्तरदायी और लोकतांत्रिक रूप से टिकाऊ है।

इस प्रकार, यह अध्ययन न केवल भारतीय संवैधानिक विमर्श में योगदान देता है, बल्कि वैश्विक पर्यावरणीय संवैधानिकता की उभरती बहस में भी एक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक और तुलनात्मक हस्तक्षेप प्रस्तुत करता है।

2. सैद्धांतिक ढाँचा

यह अध्ययन दो परस्पर-संबद्ध सैद्धांतिक धाराओं—(1) पारिस्थितिक संवैधानिकता (Ecological Constitutionalism) तथा (2) पर्यावरणीय शासन सिद्धांत (Environmental Governance Theory)—को एकीकृत करते हुए भारतीय संवैधानिक अनुभव का विश्लेषण करता है। इसके अतिरिक्त, यह रूपांतरणीय संवैधानिकता (Transformative Constitutionalism) को एक मध्यवर्ती विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में उपयोग करता है, जिससे यह समझा जा सके कि न्यायिक सक्रियता किस प्रकार संवैधानिक ढाँचे को पर्यावरणीय दिशा में रूपांतरित करती है।

2.1 पारिस्थितिक संवैधानिकता: मानक आधार

पारिस्थितिक संवैधानिकता का मूल तर्क यह है कि आधुनिक संवैधानिक व्यवस्थाएँ, जो पारंपरिक रूप से मानव-केंद्रित (anthropocentric) रही हैं, उन्हें पारिस्थितिक सीमाओं और पृथ्वी-प्रणाली (Earth System) की वास्तविकताओं

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

के अनुरूप पुनर्गठित किया जाना चाहिए (Bosselmann, 2015)। यह दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण को मात्र नीतिगत प्राथमिकता के रूप में नहीं, बल्कि संवैधानिक व्यवस्था के संरचनात्मक सिद्धांत के रूप में स्थापित करने की वकालत करता है। Kotzé (2019) के अनुसार, एंथ्रोपोसीन (Anthropocene) युग में संवैधानिकता को "पृथ्वी-प्रणाली कानून" (Earth System Law) की दिशा में विकसित होना चाहिए, जहाँ पारिस्थितिक अखंडता (ecological integrity) राज्य की वैधता का मानक बने। इस दृष्टिकोण के चार प्रमुख आयाम हैं:

1. **अंतःपीढ़ी न्याय (Intergenerational Justice)** – वर्तमान नीतियाँ भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों को प्रभावित करती हैं।
2. **प्रकृति का अंतर्निहित मूल्य (Intrinsic Value of Nature)** – प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि स्वतंत्र नैतिक इकाई है।
3. **सतत विकास एक संवैधानिक सिद्धांत के रूप में** – विकास और संरक्षण के बीच संतुलन।
4. **पारिस्थितिक सीमाओं की संवैधानिक स्वीकृति** – आर्थिक नीतियों को पर्यावरणीय सीमाओं के भीतर संचालित करना।

यह सैद्धांतिक ढाँचा लैटिन अमेरिकी संविधानों (जैसे इक्वाडोर) में प्रकृति के अधिकारों की मान्यता से प्रेरित है (Boyd, 2017)। हालाँकि, पारिस्थितिक संवैधानिकता केवल अधिकार-आधारित मॉडल तक सीमित नहीं है; यह शासन संरचना के पुनर्संयोजन की माँग करती है।

2.2 रूपांतरणीय संवैधानिकता

रूपांतरणीय संवैधानिकता उस प्रक्रिया को संदर्भित करती है जिसके माध्यम से संवैधानिक व्याख्या सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में दीर्घकालिक परिवर्तन लाती है। Klare (1998) के अनुसार, रूपांतरणीय संवैधानिकता का उद्देश्य संविधान को सामाजिक न्याय और संरचनात्मक परिवर्तन का उपकरण बनाना है।

भारतीय संदर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 21 की विस्तृत व्याख्या—जिसमें स्वच्छ पर्यावरण को जीवन के अधिकार में सम्मिलित किया गया—रूपांतरणीय संवैधानिकता का उदाहरण है। यह न्यायिक प्रक्रिया पारिस्थितिक संवैधानिकता की दिशा में एक व्यावहारिक कदम के रूप में देखी जा सकती है।

हालाँकि, इस प्रक्रिया की सीमाएँ भी हैं। न्यायिक सक्रियता लोकतांत्रिक वैधता, संस्थागत संतुलन और कार्यपालिका की उत्तरदायित्व-प्रणाली पर प्रश्न उठा सकती है (Shankar & Mehta, 2008)। अतः रूपांतरणीय संवैधानिकता को स्थायी बनाने के लिए संस्थागत और नीतिगत सुदृढ़ीकरण आवश्यक है।

2.3 पर्यावरणीय शासन सिद्धांत

पर्यावरणीय शासन सिद्धांत राज्य-केंद्रित नियामक मॉडल से आगे बढ़कर बहु-स्तरीय, बहु-अभिनेत्री (multi-actor) और नेटवर्क-आधारित शासन पर बल देता है (Lemos & Agrawal, 2006)। इसके प्रमुख तत्व हैं:

- **बहु-स्तरीय शासन (Multi-level Governance)** – स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तरों के मध्य समन्वय।
- **नियामक बहुलता (Regulatory Pluralism)** – राज्य, बाजार और नागरिक समाज की संयुक्त भूमिका।
- **पारदर्शिता और उत्तरदायित्व (Accountability Mechanisms)** – संस्थागत निगरानी और न्यायिक समीक्षा।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

- **सहभागी लोकतंत्र (Participatory Democracy)** – समुदायों और हाशिए के समूहों की भागीदारी।

Bäckstrand (2008) के अनुसार, पर्यावरणीय शासन की प्रभावशीलता लोकतांत्रिक वैधता और पारदर्शिता पर निर्भर करती है। अतः यदि पारिस्थितिक संवैधानिकता एक मानक आदर्श प्रस्तुत करती है, तो पर्यावरणीय शासन सिद्धांत उसके व्यावहारिक क्रियान्वयन की संरचना प्रदान करता है।

2.4 एकीकृत विश्लेषणात्मक मॉडल

यह अध्ययन एक एकीकृत विश्लेषणात्मक मॉडल प्रस्तावित करता है, जिसमें:

- **पारिस्थितिक संवैधानिकता** ⟶ मानक दिशा
- **रूपांतरणीय संवैधानिकता** ⟶ न्यायिक-व्याख्यात्मक प्रक्रिया
- **पर्यावरणीय शासन सिद्धांत** ⟶ संस्थागत क्रियान्वयन संरचना

इस त्रिस्तरीय ढाँचे के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि भारत में पर्यावरणीय अधिकारों का विकास केवल विधिक नवाचार नहीं, बल्कि एक व्यापक राजनीतिक-प्रशासनिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।

3. कार्यप्रणाली

यह अध्ययन गुणात्मक (qualitative) अनुसंधान-डिज़ाइन पर आधारित है, जिसमें सिद्धांतात्मक (doctrinal), तुलनात्मक (comparative) तथा मानक-विश्लेषणात्मक (normative-analytical) पद्धतियों का एकीकृत उपयोग किया गया है। चूँकि शोध का उद्देश्य पारिस्थितिक संवैधानिकता और पर्यावरणीय शासन सिद्धांत के अंतर्संबंध का परीक्षण करना है, अतः अनुसंधान-डिज़ाइन को बहु-स्तरीय विश्लेषण के अनुरूप संरचित किया गया है।

3.1 अनुसंधान डिज़ाइन (Research Design)

यह अध्ययन व्याख्यात्मक-विश्लेषणात्मक (interpretive-analytical) प्रकृति का है। इसका उद्देश्य न केवल संवैधानिक प्रावधानों और न्यायिक निर्णयों का परीक्षण करना है, बल्कि यह भी विश्लेषित करना है कि वे व्यापक राजनीतिक-संस्थागत संरचना को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। अनुसंधान तीन विश्लेषणात्मक स्तरों पर कार्य करता है:

1. **मानक स्तर (Normative Level)** – पारिस्थितिक संवैधानिकता के दार्शनिक आधारों का परीक्षण।
2. **संवैधानिक-व्याख्यात्मक स्तर (Constitutional-Interpretive Level)** – न्यायिक निर्णयों और संवैधानिक प्रावधानों का विश्लेषण।
3. **शासन-प्रायोगिक स्तर (Governance-Practical Level)** – संस्थागत क्षमता, नीति-प्रवर्तन और बहु-स्तरीय समन्वय का मूल्यांकन।

यह त्रिस्तरीय संरचना सैद्धांतिक विमर्श और व्यावहारिक शासन-विश्लेषण के मध्य सेतु स्थापित करती है।

4. संवैधानिक एवं न्यायिक विश्लेषण

4.1 संवैधानिक आधार: पर्यावरणीय अधिकारों की संरचना

भारतीय संविधान में पर्यावरण संरक्षण का स्पष्ट उल्लेख 42वें संविधान संशोधन (1976) के माध्यम से जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत:

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

- **अनुच्छेद 48A** – राज्य को पर्यावरण और वन्यजीव संरक्षण का निर्देश
- **अनुच्छेद 51A(g)** – नागरिकों का मौलिक कर्तव्य

हालाँकि, प्रारंभिक संविधान में पर्यावरणीय अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में स्पष्ट रूप से मान्यता नहीं दी गई थी। न्यायपालिका ने **अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार)** की विस्तृत व्याख्या के माध्यम से "स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार" को जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग घोषित किया।

इस प्रकार, भारतीय मॉडल "पाठ-आधारित" (textually explicit) न होकर "व्याख्यात्मक-न्यायिक" (interpretive-judicial) मॉडल के रूप में विकसित हुआ।

4.2 संस्थागत तंत्र और राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT)

पर्यावरणीय न्याय के प्रवर्तन हेतु 2010 में राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) की स्थापना की गई। NGT ने पर्यावरणीय विवादों के त्वरित निपटान हेतु विशेषज्ञ-आधारित न्यायिक मंच प्रदान किया। इसके माध्यम से पर्यावरणीय शासन का संस्थाकरण हुआ, जिससे सर्वोच्च न्यायालय पर भार कम हुआ। हालाँकि, संसाधन-सीमाएँ, नियुक्ति-विवाद और अनुपालन-संकट इसके समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

4.3 पारिस्थितिक संवैधानिकता की ओर संक्रमण

उपरोक्त निर्णयों और संस्थागत विकास के आधार पर भारतीय मॉडल में निम्नलिखित विशेषताएँ उभरती हैं:

1. व्याख्यात्मक विस्तार द्वारा पर्यावरणीय अधिकारों की मान्यता
2. अंतरराष्ट्रीय सिद्धांतों का आंतरिक समावेशन
3. न्यायपालिका-प्रेरित शासन-सुधार
4. बहु-स्तरीय शासन संरचना

फिर भी, यह मॉडल अभी पूर्ण पारिस्थितिक संवैधानिकता तक नहीं पहुँचा है, क्योंकि:

- प्रकृति को स्वतंत्र कानूनी व्यक्तित्व की मान्यता सीमित है
- जलवायु परिवर्तन पर स्पष्ट संवैधानिक दिशा-निर्देश अनुपस्थित हैं
- संस्थागत समन्वय में असंगति है

भारतीय संवैधानिक पर्यावरणवाद एक संक्रमणशील (transitional) मॉडल है। यह पारंपरिक मानव-केंद्रित संवैधानिकता से पारिस्थितिक-केंद्रित संवैधानिकता की ओर अग्रसर है, परंतु अभी भी विकासात्मक प्राथमिकताओं से बंधा हुआ है।

5. निष्कर्ष एवं चर्चा

5.1 न्यायिक-प्रेरित पारिस्थितिक संवैधानिक मॉडल

इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि भारत एक **न्यायिक-प्रेरित पारिस्थितिक संवैधानिक मॉडल (Judicially-Driven Ecological Constitutionalism)** प्रस्तुत करता है। भारतीय संविधान में पर्यावरणीय अधिकार का स्पष्ट मौलिक अधिकार के रूप में उल्लेख नहीं है; तथापि, न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 की विस्तृत व्याख्या के माध्यम से "स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार" को जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग स्थापित किया है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

यह प्रवृत्ति "संवैधानिक न्यायिककरण" (judicialization of politics) की व्यापक वैश्विक प्रक्रिया से जुड़ी है, जहाँ न्यायालय नीति-निर्धारण के क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाने लगते हैं (Hirschl, 2008)। भारतीय संदर्भ में, न्यायपालिका ने न केवल अधिकारों का विस्तार किया, बल्कि अंतरराष्ट्रीय पर्यावरणीय सिद्धांतों—जैसे सावधानी सिद्धांत और प्रदूषक-भुगतान सिद्धांत—को घरेलू विधि का अंग भी बनाया।

इस प्रकार, भारतीय मॉडल की विशिष्टता यह है कि यह पाठ-आधारित संवैधानिक पर्यावरणवाद के स्थान पर **व्याख्यात्मक संवैधानिकता** (interpretive constitutionalism) पर आधारित है। यह मॉडल लचीला है, परंतु इसकी स्थिरता न्यायिक सक्रियता पर निर्भर रहती है।

5.2 नीति-रिक्तता की पूर्ति में न्यायपालिका की भूमिका

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत में पर्यावरणीय शासन के क्षेत्र में विधायी और कार्यकारी निष्क्रियता के समय न्यायपालिका ने "नीति-रिक्तता" (policy vacuum) को भरा है।

पर्यावरणीय प्रभाव आकलन, औद्योगिक उत्तरदायित्व, और प्रदूषण नियंत्रण के संदर्भ में कई बार न्यायालयों ने प्रशासनिक दिशा-निर्देश निर्धारित किए। यह स्थिति Lemos और Agrawal (2006) द्वारा वर्णित "बहु-स्तरीय पर्यावरणीय शासन" की अवधारणा से मेल खाती है, जहाँ विभिन्न संस्थाएँ परस्पर पूरक भूमिका निभाती हैं। हालाँकि, इस प्रवृत्ति से दो महत्वपूर्ण प्रश्न उभरते हैं:

1. क्या न्यायपालिका का नीति-निर्धारण में प्रवेश लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को प्रभावित करता है?
2. क्या दीर्घकालिक शासन-सुधार न्यायिक निर्देशों के माध्यम से संभव है?

अध्ययन इंगित करता है कि न्यायिक हस्तक्षेप तात्कालिक सुधार ला सकता है, परंतु सतत संस्थागत परिवर्तन के लिए विधायी सुदृढ़ीकरण आवश्यक है।

5.3 शासन संरचना की संस्थागत सीमाएँ

यद्यपि भारत ने राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) जैसे संस्थागत तंत्र विकसित किए हैं, फिर भी पर्यावरणीय शासन की प्रभावशीलता कई कारणों से सीमित है:

- संस्थागत समन्वय का अभाव
- अनुपालन और प्रवर्तन में कमी
- संसाधन एवं विशेषज्ञता की सीमाएँ
- संघीय ढाँचे में केंद्र–राज्य असंतुलन

यह स्थिति "नॉर्मेटिव-इंस्टीट्यूशनल गैप" (normative-institutional gap) को दर्शाती है—अर्थात् संवैधानिक आदर्शों और प्रशासनिक क्षमता के बीच असंगति (Lemos & Agrawal, 2006)।

पारिस्थितिक संवैधानिकता के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए केवल अधिकार-मान्यता पर्याप्त नहीं है; इसके लिए संस्थागत दक्षता, पारदर्शिता और जवाबदेही भी आवश्यक है।

5.4 सहभागी लोकतंत्र और पर्यावरणीय न्याय

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि भारतीय पर्यावरणीय शासन अभी भी न्यायपालिका-प्रधान (court-centric) है, जबकि दीर्घकालिक स्थिरता के लिए **सहभागी लोकतंत्र (participatory democracy)** आवश्यक है। पर्यावरणीय निर्णयों में स्थानीय समुदायों, नागरिक समाज और स्वदेशी समूहों की भागीदारी सतत विकास के लिए केंद्रीय है। वैश्विक पर्यावरणीय संवैधानिकता के विमर्श में भी समुदाय-आधारित शासन और पारिस्थितिक लोकतंत्र को प्रमुख स्थान दिया गया है (May & Daly, 2015)।

भारतीय संदर्भ में जन-सुनवाई, ग्राम सभा की भूमिका और पर्यावरणीय प्रभाव आकलन प्रक्रियाओं को अधिक पारदर्शी और समावेशी बनाने की आवश्यकता है। इस प्रकार, न्यायिक सक्रियता को सहभागी लोकतंत्र के साथ संतुलित करना पारिस्थितिक संवैधानिकता की अगली अवस्था हो सकती है।

5.5 संवैधानिक आदर्श बनाम प्रशासनिक क्षमता

अध्ययन यह इंगित करता है कि भारत में पर्यावरणीय संवैधानिक आदर्श उच्च स्तर पर स्थापित हैं, किंतु प्रशासनिक क्षमता और प्रवर्तन-तंत्र अपेक्षाकृत कमजोर हैं।

यह अंतर निम्न रूपों में प्रकट होता है:

- पर्यावरणीय प्रभाव आकलन की औपचारिकता
- प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की सीमित स्वायत्तता
- न्यायिक आदेशों के अनुपालन में देरी
- जलवायु परिवर्तन नीतियों का आंशिक क्रियान्वयन

इससे स्पष्ट होता है कि पारिस्थितिक संवैधानिकता का वास्तविक परीक्षण न्यायालयों के निर्णयों में नहीं, बल्कि प्रशासनिक कार्यान्वयन में निहित है। Hirschl (2008) के अनुसार, जब न्यायालय अत्यधिक केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, तो शासन की अन्य शाखाओं की उत्तरदायित्व-क्षमता प्रभावित हो सकती है। भारतीय अनुभव इस सैद्धांतिक दृष्टिकोण की पुष्टि करता है।

5.6 सैद्धांतिक योगदान

यह अध्ययन निम्नलिखित सैद्धांतिक योगदान प्रस्तुत करता है:

1. भारतीय मॉडल को "न्यायिक-प्रेरित पारिस्थितिक संवैधानिकता" के रूप में अवधारित करना।
2. पर्यावरणीय शासन सिद्धांत और संवैधानिक व्याख्या के मध्य अंतर्संबंध को स्पष्ट करना।
3. "नॉर्मेटिव-इंस्टीट्यूशनल गैप" को विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में प्रस्तुत करना।
4. सहभागी लोकतंत्र को पारिस्थितिक संवैधानिकता के अगले चरण के रूप में प्रस्तावित करना।

5.7 नीतिगत निहितार्थ

- पर्यावरणीय अधिकारों का स्पष्ट संवैधानिक उल्लेख
- जलवायु न्याय को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता
- संस्थागत समन्वय को सुदृढ़ करना
- NGT और प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्वायत्तता बढ़ाना
- स्थानीय समुदायों की निर्णय-प्रक्रिया में अनिवार्य भागीदारी

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

6 उपसंहार

यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारत का पर्यावरणीय संवैधानिक ढाँचा एक **संक्रमणशील, न्यायिक-प्रेरित पारिस्थितिक संवैधानिक मॉडल** का प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि भारतीय संविधान में पर्यावरणीय अधिकारों का स्पष्ट एवं पृथक मौलिक अधिकार के रूप में उल्लेख नहीं है, तथापि न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 की प्रगतिशील और उद्देश्यपरक व्याख्या के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण को जीवन, गरिमा और मानवीय अस्तित्व के साथ अभिन्न रूप से जोड़ा है।

इस प्रकार, भारतीय संदर्भ में पर्यावरणीय संवैधानिकता का विकास मुख्यतः न्यायिक व्याख्या के माध्यम से हुआ है, न कि संवैधानिक पाठ की प्रत्यक्ष घोषणा द्वारा। यह प्रवृत्ति वैश्विक स्तर पर "न्यायिककरण" (judicialization of politics) की व्यापक प्रक्रिया से जुड़ती है, जिसमें न्यायालय सार्वजनिक नीति के जटिल क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका ग्रहण करते हैं (Hirschl, 2008)।

भारतीय अनुभव यह दर्शाता है कि न्यायिक सक्रियता ने कई अवसरों पर नीतिगत शून्यता को भरते हुए शासन-सुधार की दिशा में उत्प्रेरक भूमिका निभाई है। तथापि, यह मॉडल अपनी दीर्घकालिक स्थिरता और प्रभावशीलता के लिए संस्थागत क्षमता, प्रशासनिक दक्षता तथा विधायी समर्थन पर निर्भर करता है।

अध्ययन स्पष्ट करता है कि पारिस्थितिक संवैधानिकता को केवल अधिकारों की न्यायिक मान्यता तक सीमित करके नहीं समझा जा सकता। यह शासन-संरचना, नीति-निर्माण प्रक्रिया, बहु-स्तरीय संस्थागत समन्वय और लोकतांत्रिक सहभागिता की गुणवत्ता से गहराई से संबद्ध है। भारतीय अनुभव दो समानांतर और आंशिक रूप से विरोधाभासी प्रवृत्तियों को रेखांकित करता है:

1. न्यायिक सक्रियता के माध्यम से पर्यावरणीय अधिकारों का निरंतर विस्तार।
2. प्रशासनिक क्षमता, प्रवर्तन-तंत्र और अनुपालन संरचना की संरचनात्मक सीमाएँ।

यह द्वैत इस तथ्य की पुष्टि करता है कि संवैधानिक आदर्शों और व्यावहारिक क्रियान्वयन के मध्य एक "संरचनात्मक अंतर" विद्यमान है। न्यायिक हस्तक्षेप इस अंतर को अस्थायी रूप से कम कर सकता है, किंतु इसे स्थायी रूप से समाप्त करने के लिए संस्थागत पुनर्गठन और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता है।

6.1 सैद्धांतिक निहितार्थ

यह अध्ययन पारिस्थितिक संवैधानिकता के विमर्श में तीन प्रमुख सैद्धांतिक योगदान प्रस्तुत करता है:

(i) न्यायिक-प्रेरित पारिस्थितिक संवैधानिकता का अवधारणात्मक प्रतिमान

अध्ययन भारतीय संदर्भ को "Judicially-Driven Ecological Constitutionalism" के रूप में अवधारित करता है। यह प्रतिमान दर्शाता है कि जहाँ संवैधानिक पाठ पर्यावरणीय अधिकारों के प्रश्न पर सीमित या मौन हो, वहाँ न्यायपालिका संवैधानिक नैतिकता, मानवाधिकार सिद्धांतों तथा अंतरराष्ट्रीय पर्यावरणीय मानकों के आधार पर अधिकार-क्षेत्र का विस्तार कर सकती है (Hirschl, 2008)।

यह मॉडल संवैधानिक विकास के एक वैकल्पिक मार्ग को इंगित करता है, जो पाठ-संशोधन की अपेक्षा व्याख्यात्मक सृजनशीलता पर आधारित है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

(ii) पर्यावरणीय शासन और संवैधानिक व्याख्या का अंतर्संबंध

पर्यावरणीय शासन सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि पर्यावरणीय संरक्षण बहु-स्तरीय संस्थागत समन्वय, नीति-एकीकरण और उत्तरदायित्व तंत्र की माँग करता है (Lemos & Agrawal, 2006)। भारतीय अनुभव यह स्पष्ट करता है कि न्यायिक सक्रियता तभी प्रभावी हो सकती है जब वह विधायी और कार्यकारी तंत्र के साथ संतुलित रूप से अंतःक्रिया करे।

इस प्रकार, संवैधानिक व्याख्या और शासन-संरचना के मध्य एक गतिशील संबंध विद्यमान है, जिसे पारिस्थितिक संवैधानिकता के अध्ययन में अधिक व्यवस्थित रूप से समाहित करने की आवश्यकता है।

(iii) नॉर्मेटिव–इंस्टीट्यूशनल गैप की अवधारणा

अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि संवैधानिक आदर्शों (normative commitments) और संस्थागत क्षमता (institutional performance) के बीच का अंतर पारिस्थितिक संवैधानिकता की केंद्रीय चुनौती है। यह "नॉर्मेटिव–इंस्टीट्यूशनल गैप" न केवल भारत, बल्कि अन्य उभरते लोकतंत्रों में भी तुलनात्मक विश्लेषण का आधार बन सकता है।

यह अवधारणा भविष्य के तुलनात्मक संवैधानिक अध्ययनों में एक विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में प्रयोज्य है।

6.2 नीतिगत एवं व्यावहारिक निहितार्थ

भारतीय अनुभव से निम्नलिखित नीतिगत संकेत प्राप्त होते हैं:

1. पर्यावरणीय अधिकारों का स्पष्ट और स्वतंत्र संवैधानिक उल्लेख, जिससे न्यायिक व्याख्या पर अत्यधिक निर्भरता कम हो।
2. जलवायु परिवर्तन को मौलिक अधिकारों और राज्य के दायित्वों के ढाँचे में औपचारिक रूप से सम्मिलित करना।
3. राष्ट्रीय हरित अधिकरण तथा प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की संस्थागत स्वायत्तता, संसाधन-सुदृढ़ीकरण और विशेषज्ञता-विकास।
4. पर्यावरणीय प्रभाव आकलन प्रक्रियाओं में पारदर्शिता, वैज्ञानिक कठोरता और अनिवार्य जनसहभागिता।
5. संघीय ढाँचे में केंद्र–राज्य समन्वय और उत्तरदायित्व तंत्र को सुदृढ़ करना।

अतः न्यायिक हस्तक्षेप को संस्थागत सुदृढ़ीकरण, विधायी स्पष्टता और सहभागी लोकतंत्र के साथ समेकित करना दीर्घकालिक पारिस्थितिक न्याय की दिशा में आवश्यक है। पारिस्थितिक संवैधानिकता केवल विधिक संरचना का प्रश्न नहीं है; यह शासन, लोकतंत्र और विकास की पुनर्परिभाषा का प्रश्न है। भारत का अनुभव यह दर्शाता है कि न्यायपालिका परिवर्तन का उत्प्रेरक बन सकती है, किंतु स्थायी पारिस्थितिक न्याय के लिए बहु-स्तरीय संस्थागत सुधार, राजनीतिक इच्छाशक्ति, वैज्ञानिक नीति-निर्माण और सक्रिय सामाजिक सहभागिता अनिवार्य हैं। अंततः, पारिस्थितिक संवैधानिकता की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि संवैधानिक आदर्शों को प्रशासनिक क्षमता, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और पारदर्शी शासन-प्रक्रियाओं के साथ किस हद तक समन्वित किया जाता है।

संदर्भ सूची

1. Bäckstrand, K. (2008). Accountability of networked climate governance: The rise of transnational climate partnerships. *Global Environmental Politics, 8*(3), 74–102.
2. Bosselmann, K. (2015). *Earth governance: Trusteeship of the global commons*. Edward Elgar Publishing.
3. Boyd, D. R. (2012). *The environmental rights revolution: A global study of constitutions, human rights, and the environment*. UBC Press.
4. Ginsburg, T. (2010). Constitutional specificity, unintended consequences and environmental rights. *University of Pennsylvania Journal of Constitutional Law, 12*(3), 1–25.
5. Hirschl, R. (2008). The judicialization of politics. In K. E. Whittington, R. D. Kelemen, & G. A. Caldeira (Eds.), *The Oxford handbook of law and politics* (pp. 119–141). Oxford University Press.
6. Klare, K. E. (1998). Legal culture and transformative constitutionalism. *South African Journal on Human Rights, 14*(1), 146–188.
7. Lemos, M. C., & Agrawal, A. (2006). Environmental governance. *Annual Review of Environment and Resources, 31*, 297–325. https://doi.org/10.1146/annurev.energy.31.042605.135621
8. May, J. R., & Daly, E. (2015). *Global environmental constitutionalism*. Cambridge University Press.
9. Rosencranz, A., & Jackson, M. (2003). The Delhi pollution case: The Supreme Court of India and the limits of judicial power. *Columbia Journal of Environmental Law, 28*(2), 223–260.
10. Shankar, S., & Mehta, P. B. (2008). Courts and socioeconomic rights in India. *Public Law*, 2008(1), 1–25.